भरतजी चित्रकूट के मार्ग में

चौपाई :

*** जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू॥ रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥1॥

भावार्थ:

उस दिन यमुनाजी के किनारे निवास किया। समयानुसार सबके लिए (खान-पान आदि की) सुंदर व्यवस्था हुई (निषादराज का संकेत पाकर) रात ही रात में घाट-घाट की अगणित नावें वहाँ आ गईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

*** प्रात पार भए एकहि खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ॥ चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥2॥

भावार्थ:

सबेरे एक ही खेवे में सब लोग पार हो गए और श्री रामचंद्रजी के सखा निषादराज की इस सेवा से संतुष्ट हुए। फिर स्नान करके और नदी को सिर नवाकर निषादराज केसाथ दोनों भाई चले॥2॥

*** आगें मुनिबर बाहन आछें। राजसमाज जाइ सबु पाछें॥ तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥3॥

भावार्थ:

आगे अच्छी-अच्छी सवारियों पर श्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा है। उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादेभूषण-वस्त्र और वेष से पैदल चल रहे हैं॥3॥

*** सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥ जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥4॥

भावार्थ:

सेवक, मित्र और मंत्री के पुत्र उनके साथ हैं। लक्ष्मण, सीताजी और श्री रघुनाथजी का स्मरण करते जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ श्री रामजी ने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं॥4॥

दोहा :

*** मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ। देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ॥221॥

भावार्थ:

मार्ग में रहने वाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौंदर्य) और प्रेम को देखकर वे सब जन्म लेने का फल पाकर आनंदित होते हैं॥221॥

चौपाई :

*** कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥ बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥1॥

भावार्थ:

गाँवों की स्त्रियाँ एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक कहती हैं- सखी! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं? हे सखी! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं के समान है॥1॥

*** बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगें अनी चली चतुरंगा॥ नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥2॥

भावार्थ:

परन्तु सखी! इनका न तो वह वेष (वल्कल वस्त्रधारी मुनिवेष) है, न सीताजी ही संग हैं और इनके आगे चतुरंगिणी सेना चली जा रही है। फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मन में खेद है। हे सखी! इसी भेद के कारण संदेह होता है॥2॥

*** तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी॥ तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥3॥

भावार्थ:

उसका तर्क (युक्ति) अन्य स्त्रियों के मन भाया। सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर) कोई नहीं है। उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली॥3॥

*** कहि सप्रेम बस कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू॥ भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी के राजतिलक का आनंद जिस प्रकार से भंग हुआ था, वह सब कथाप्रसंग प्रेमपूर्वक कहकर फिर वह भाग्यवती स्त्री श्री भरतजी के शील, स्नेह और स्वभाव की सराहना करने लगी॥4॥

दोहा :

*** चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु। जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥222॥

भावार्थ:

(वह बोली-) देखो, ये भरतजी पिता के दिए हुए राज्य को त्यागकर पैदल चलते और फलाहार

करते हुए श्री रामजी को मनाने के लिए जा रहे हैं। इनके समान आज कौन है?॥222॥।

चौपाई :

*** भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥ जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई॥1॥

भावार्थ:

भरतजी का भाईपना, भक्ति और इनके आचरण कहने और सुनने से दुःख और दोषों के हरने वाले हैं। हे सखी! उनके संबंध में जो कुछ भी कहा जाए, वह थोड़ा है। श्री रामचंद्रजी के भाई ऐसे क्यों न हों॥1॥

*** हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें॥ सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं॥2॥

भावार्थ:

छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी को देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी) स्त्रियों की गिनती में आ गईं। इस प्रकार भरतजी के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं और कहती हैं- यह पुत्र कैकयी जैसी माता के योग्य नहीं है॥2॥

*** कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन॥ कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥3॥

भावार्थ:

कोई कहती है- इसमें रानी का भी दोष नहीं है। यह सब विधाता ने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। कहाँ तो हम लोक और वेद दोनों की विधि (मर्यादा) से हीन, कुल और करतूत दोनों से मलिन तुच्छ स्त्रियाँ,॥3॥

*** बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा॥ अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥4॥

भावार्थ:

जो बुरे देश (जंगली प्रान्त) और बुरे गाँव में बसती हैं और (स्त्रियों में भी) नीच स्त्रियाँ हैं! और कहाँ यह महान् पुण्यों का परिणामस्वरूप इनका दर्शन! ऐसा ही आनंद और आश्चर्य गाँव-गाँव में हो रहा है। मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग गया हो॥4॥

दोहा :

*** भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु। जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु॥223॥

भावार्थ:

भरतजी का स्वरूप देखते ही रास्ते में रहने वाले लोगों के भाग्य खुल गए! मानो दैवयोग से सिंहलद्वीप के बसने वालों को तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो!॥223॥

चौपाई :

*** निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥ तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥1॥

भावार्थ:

(इस प्रकार) अपने गुणों सहित श्री रामचंद्रजी के गुणों की कथा सुनते और श्री रघुनाथजी को स्मरण करते हुए भरतजी चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियों के आश्रम तथा देवताओं के मंदिर देखकर प्रणाम करते हैं॥1॥

*** मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥ मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥2॥

भावार्थ:

और मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि श्री सीता-रामजी के चरण कमलों में प्रेम हो। मार्ग में भील, कोल आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं॥2॥

*** करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही॥ ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं॥3॥

भावार्थ:

उनमें से जिस-तिस से प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मणजी, श्री रामजी और जानकीजी किस वन में हैं? वे प्रभु के सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल पाते हैं॥3॥

*** जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥ एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी॥4॥

भावार्थ:

जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुशलपूर्वक देखा है, उनको ये श्री राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारे मानते हैं। इस प्रकार सबसे सुंदर वाणी से पूछते और श्री रामजी के वनवास की कहानी सुनते जाते हैं॥4॥

दोहा :

*** तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ। राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥224॥

भावार्थ:

उस दिन वहीं ठहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्री रघुनाथजी का स्मरण करके चले। साथ के सब लोगों को भी भरतजी के समान ही श्री रामजी के दर्शन की लालसा (लगी हुई) है॥224॥

चौपाई :

*** मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥ भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू॥1॥

भावार्थ:

सबको मंगलसूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देने वाले (पुरुषों के दाहिने और स्त्रियों के बाएँ) नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाज सहित भरतजी को उत्साह हो रहा है कि श्री रामचंद्रजी मिलेंगे और दुःख का दाह मिट जाएगा॥1॥

*** करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके। सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं॥2॥

भावार्थ:

जिसके जी में जैसा है, वह वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेही रूपी मदिरा से छके (प्रेम में मतवाले हुए) चले जा रहे हैं। अंग शिथिल हैं, रास्ते में पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं॥2॥

*** रामसखाँ तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥ जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥3॥

भावार्थ:

रामसखा निषादराज ने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि कामदगिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदी के तट पर सीताजी समेत दोनों भाई निवास करते हैं॥3॥

*** देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥ प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥4॥

भावार्थ:

सब लोग उस पर्वत को देखकर 'जानकी जीवन श्री रामचंद्रजी की जय हो।' ऐसा कहकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानो श्री रघुनाथजी अयोध्या को लौट चले हों॥4॥

दोहा :

*** भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥225॥

भावार्थ:

भरतजी का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कवि के लिए तो वह वैसा ही अगम है, जैसा अहंता और ममता से मलिन मनुष्यों के लिए ब्रह्मानंद!॥225॥

चौपाई :

*** सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥ जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें॥1॥

भावार्थ:

सब लोग श्री रामचंद्रजी के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिनभर में) दो

ही कोस चल पाए और जल-स्थल का सुपास देखकर रात को वहीं (बिना खाए-पीए ही) रह गए। रात बीतने पर श्री रघुनाथजी के प्रेमी भरतजी ने आगे गमन किया॥1॥ श्री सीताजी का स्वप्न, श्री रामजी को कोल-किरातों द्वारा भरतजी के आगमन की सूचना, रामजी का शोक, लक्ष्मणजी का क्रोध

*** उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा॥ सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥2॥

भावार्थ:

उधर श्री रामचंद्रजी रात शेष रहते ही जागे। रात को सीताजी ने ऐसा स्वप्न देखा (जिसे वे श्री रामचंद्रजी को सुनाने लगीं) मानो समाज सहित भरतजी यहाँ आए हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है॥2॥

*** सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥ सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन॥3॥

भावार्थ:

सभी लोग मन में उदास, दीन और दुःखी हैं। सासुओं को दूसरी ही सूरत में देखा। सीताजी का स्वप्न सुनकर श्री रामचंद्रजी के नेत्रों में जल भर गया और सबको सोच से छुड़ा देने वाले प्रभु स्वयं (लीला से) सोच के वश हो गए॥3॥

*** लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥ अस कहि बंधु समेत नहाने पूजि पुरारि साधु सनमाने॥4॥

भावार्थ:

(और बोले-) लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनावेगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारी महादेवजी का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया॥4॥ छंद :

*** सनमानि सुर मुनिबंदि बैठे उतर दिसि देखत भए। नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए॥ तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे। सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

भावार्थ:

देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वंदना करके श्री रामचंद्रजी बैठ गए और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु केआश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्री रामचंद्रजी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है? वे चित्त में आश्चर्ययुक्त हो गए। उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहे। सोरठा :

*** सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर। सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह

जल॥226॥

भावार्थ:

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुंदर मंगल वचन सुनते ही श्री रामचंद्रजी के मन में बड़ा आनंद हुआ। शरीर में पुलकावली छा गई और शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्रप्रेमाश्रुओं से भर गए॥226॥

चौपाई :

*** बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू॥ एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥1॥

भावार्थ:

सीतापति श्री रामचंद्रजी पुनः सोच के वश हो गए कि भरत के आने का क्या कारण है? फिर एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है॥1॥

*** सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥ भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥2॥

भावार्थ:

यह सुनकर श्री रामचंद्रजी को अत्यंत सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और उधर भाईभरतजी का संकोच! भरतजी के स्वभाव को मन में समझकर तो प्रभु श्री रामचंद्रजी चित्त को ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं॥2॥

*** समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥ लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥3॥

भावार्थ:

तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहने में (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मणजी ने देखा कि प्रभु श्री रामजी के हृदय में चिंता है तो वे समय के अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे-॥3॥

*** बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं॥ तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥4॥

भावार्थ:

हे स्वामी! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ ऐसा अवसर नहीं है, इसलिए यह मेरा कहना ढिठाई नहीं होगा)। हे स्वामी! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब जानते ही हैं)। मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ॥4॥

दोहा :

*** नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान। सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥227॥

भावार्थ:

हे नाथ! आप परम सुहृद् (बिना ही कारण परम हित करने वाले), सरल हृदय तथा शील और स्नेह के भंडार हैं, आपका सभी पर प्रेम और विश्वास है, और अपने हृदय में सबको अपने ही समान जानते हैं॥227॥

चौपाई :

*** बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥ भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥1॥

भावार्थ:

परंतु मूढ़ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं।भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है, इस बात को सारा जगत् जानता है॥1॥

*** तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥ कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥2॥

भावार्थ:

वे भरतजी आज श्री रामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि रामजी (आप) वनवास में अकेले (असहाय) हैं,॥2॥

*** करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू॥ कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:

अपने मन में बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्यों को निष्कण्टक करने के लिए यहाँ आए हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकार की कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आए हैं॥3॥

*** जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥ भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ॥4॥

भावार्थ:

यदि इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार (ऐसे समय) किसे सुहाती? परन्तु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे? राजपद पा जाने पर सारा जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है॥4॥

दोहा :

*** ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान। लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥228॥

भावार्थ:

चंद्रमा गुरुपत्नी गामी हुआ, राजा नहुष ब्रह्मणों की पालकी पर चढ़ा और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया॥228॥

चौपाई :

*** सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥ भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काउ॥1॥

भावार्थ:

सहस्रबाहु, देवराज इंद्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिए॥1॥

*** एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥ समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥2॥

भावार्थ:

हाँ, भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो रामजी (आप) को असहाय जानकर उनका निरादर किया! पर आज संग्राम में श्री रामजी (आप) का क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझ में विशेष रूप से आ जाएगी (अर्थात् इस निरादर का फल भी वे अच्छी तरह पा जाएँगे)॥2॥

*** एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥ प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥3॥

भावार्थ:

इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरस भूल गए और युद्धरस रूपी वृक्ष पुलकावली के बहाने से फूल उठा (अर्थात् नीति की बात कहते-कहते उनके शरीर में वीर रस छा गया)। वे प्रभु श्री रामचंद्रजी के चरणों की वंदना करके, चरण रज को सिर पर रखकर सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले॥3॥

*** अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा॥ कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥4॥

भावार्थ:

हे नाथ! मेरा कहना अनुचित न मानिएगा। भरत ने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है)। आखिर कहाँ तक सहा जाए और मन मारे रहा जाए, जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है!॥4॥

दोहा :

*** छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान। लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥229॥

भावार्थ:

क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म और फिर मैं श्री रामजी (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ, यह जगत्

जानता है। (फिर भला कैसे सहा जाए?) धूल के समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारने पर सिर ही चढ़ती है॥229॥

चौपाई :

*** उठि कर जोरि रजायसु मागा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥ बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥1॥

भावार्थ:

यों कहकर लक्ष्मणजी ने उठकर, हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जाग उठा हो। सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस लिया और धनुष को सजाकर तथा बाण को हाथ में लेकर कहा-॥1॥

*** आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥ राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥2॥

भावार्थ:

आज मैं श्री राम (आप) का सेवक होने का यश लूँ और भरत को संग्राम में शिक्षा दूँ। श्री रामचंद्रजी (आप) के निरादर का फल पाकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रण शय्या पर सोवें॥2॥

*** आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥ जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥3॥

भावार्थ:

अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियों के झुंड को कुचल डालता है और बाज जैसे लवे को लपेट में ले लेता है॥3॥

*** तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥ जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥4॥

भावार्थ:

वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूँगा। यदि शंकरजी भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी, मुझे रामजी की सौगंध है, मैं उन्हें युद्ध में (अवश्य) मार डालूँगा (छोड़ूँगा नहीं)॥4॥

दोहा :

*** अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान। सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥230॥

भावार्थ:

लक्ष्मणजी को अत्यंत क्रोध से तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं॥230।

चौपाई :

*** जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु बलु बिपुल बखानी॥ तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥1॥

भावार्थ:

सारा जगत् भय में डूब गया। तब लक्ष्मणजी के अपार बाहु बल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई- हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है?॥1॥

*** अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ। सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥2॥

भावार्थ:

परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाए तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं॥2॥

*** सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥ कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥3॥

भावार्थ:

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गए। श्री रामचंद्रजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया (और कहा-) हे तात! तुमने बड़ी सुंदर नीति कही। हे भाई! राज्य का मद सबसे कठिन मद है॥3॥

*** जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥ सुनहू लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥4॥

भावार्थ:

जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है॥4॥

दोहा :

*** भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥231॥

भावार्थ:

(अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने का! क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसमुद्रनष्ट हो सकता (फट सकता) है?॥231॥